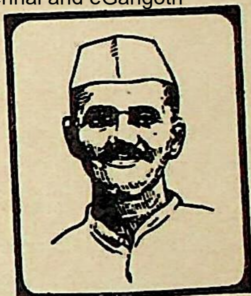
# दुर शास्त्री

शिवशंकर

बहादुर



# लालबहादुर शास्त्री

शिवशंकर






उमेश प्रकाशन
५, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-६

## भारतरत्न माला की अन्य पुस्तकें :

- □ चक्रवर्ती राजगोपालाचारी
- □ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
- □ चन्द्रशेखर वेंकट रमन
- □ जवाहरलाल नेहरू
- □ मोक्षगुण्डम् विश्वेश्वरैया
- □ भगवानदास
- □ गोविन्दवल्लभ पन्त
- □ धोंडो केशव कर्वे
- □ बिधानचन्द्र राय
- □ पुरुषोत्तमदास टण्डन
- □ राजेन्द्रप्रसाद
- □ जाकिर हुसैन
- □ पाण्डुरंगवामन काणे
- □ लालबहादुर शास्त्री
- □ इन्दिरा गांधी

# नन्हा-सा नन्हे






एक था लड़का। उसका नाम था नन्हे। नन्हे बहुत गरीब था। वह जब छोटा-सा था, तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई। नन्हे अपनी मां के साथ अपने मौसा के यहां रहने चला गया।

एक दिन की बात है, नन्हे अपने दोस्तों के साथ खेलता-खेलता एक फुलवारी में घुस गया। वहां खिले सुन्दर-सुन्दर फूलों को देख कर सब लड़कों का मन ललचा गया और वे धड़ाधड़ फूल तोड़ने लग गए। इतने में आ गया माली। उसे देख कर और सब लड़के तो जल्दी-जल्दी भाग निकले, लेकिन नन्हे था छोटा-सा, सो अपने दूसरे साथियों की तरह तेज भाग नहीं सका और माली के हाथों में पड़ गया। बस, फिर क्या था! मालो ने ताबड़तोड़ नन्हे को मारना शुरू कर दिया।

नन्हा मालो की मार को सह न सका और दुखी

# होनहार बिरवान के...



लालबहादुर के पिता तो थे नहीं। रिश्तेदारों की कृपा से ही मां-बेटे को खाना-कपड़ा मिला करता था। लालबहादुर की पढ़ाई का इन्तजाम भी वही लोग करते थे। एक कहावत है न—होनहार बिरवान के होत चीकने पात। यानी जो होनहार होता है वह बचपन से ही गुणी होता है!

यही बात लालबहादुर पर भी लागू थी। वह गरीब था तो क्या हुआ, गुणी तो था ही। खूब मन लगा कर वह बड़ी मेहनत से पढ़ाई करने लगा। आखिर उसने प्राथमिक पाठशाला की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास कर ली और आगे की पढ़ाई के लिए वाराणसी के हरिश्चन्द्र हाई स्कूल में भर्ती हो गया।

उन दिनों लालबहादुर मुगलसराय में ही अपने मामा के यहां रहने लगा था। मुगलसराय और वाराणसी के बीच में गंगा नदी बहती है। लालबहादुर रोज सवेरे नाव से गंगा पार करके स्कूल आता और

दिन-भर पढ़ने के बाद शाम को फिर नाव से गंगा पार करके घर चला जाता ।

एक दिन शाम को स्कूल बन्द होने पर लालबहादुर गंगा के तट पर तो आया, लेकिन वह नाव पर नहीं चढ़ा और बाहर ही खड़ा रहा । रोज आते-जाते देख कर नाव वाला मल्लाह लालबहादुर को पहचानने लगा था । उस दिन जब नाव चलने का समय हो गया फिर भी लालबहादुर नाव पर नहीं चढ़ा तो मल्लाह ने बुलाया—क्या बात है लालबहादुर, आज घर नहीं जाओगे क्या ?

लालबहादुर ने कहा—जाऊंगा क्यों नहीं, पर तुम्हारी नाव से नहीं चलूंगा ।

मल्लाह ने ताज्जुब से पूछा—क्यों ?

लालबहादुर ने दबी आवाज में बताया—आज तुमको उतराई देने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं ।

—अरे वाह, लालबहादुर !—मल्लाह ने हंस कर कहा—आज तुम्हारे पास पैसे नहीं है, इसीलिए क्या नाव पर नहीं चढ़ोगे ? पागल कहीं के ! आओ, आज मैं तुम्हें बिना पैसा लिए ही नदी के पार उतार दूं ।

लालबहादुर को मल्लाह की बात बड़ी अखरी । उसने नाराजगी से कहा—नहीं । मैं मुफ्त में भला क्यों

तुम्हारी नाव पर चढ़ूं ।



मल्लाह ने सुना तो दंग रह गया । उसने खुश हो कर कहा—तुम तो सचमुच बहुत अच्छे लड़के हो, लालबहादुर ! शाबास ! ठीक है, अगर मुफ्त में तुम नहीं चलना चाहते तो उधार ही सही । अभी तो तुम नाव से चले चलो, पैसे बाद में किसी दिन दे देना ।

लेकिन लालबहादुर इस पर भी नहीं माना। उसने सोचा कि मैं गरीब का बेटा हूं। मामा के यहां रह कर जैसे-कैसे मां-बेटे की गुजर-बसर हो रही है, यही बहुत है। फिर मामा बेचारे भी तो अमीर आदमी नहीं हैं। पता नहीं आगे कभी मेरे पास फालतू पैसे होंगे भी या नहीं। तब मल्लाह की उधारी कैसे चुकेगी ? इसके अलावा सबसे बड़ी बात तो यह है कि किसी के साथ उधार करना वैसे भी गन्दी बात है। जो एक बार उधार कर लेता है, वह बार-बार उधार करने लगता है। फिर धीरे-धीरे उधार करने की उसको आदत ही पड़ जाती है।

बस, लालबहादुर ने एकदम इन्कार कर दिया— नहीं, मैं उधार भी नहीं करूंगा। आज मैं तैर कर ही नदी पार करूंगा।

लालबहादुर सचमुच बड़ा हिम्मती था। बात पूरी करते न करते वह नदी में उतर पड़ा और तैरने लग गया। एक हाथ में उसने किताब-कापियां संभाल कर ऊपर उठा रखी थीं जिससे वे भीगने से बची रहें और दूसरे हाथ से पानी को काटते हुए वह तेजी के साथ दूसरे किनारे की ओर बढ़ने लगा।

नदी पार करके लालबहादुर घर पहुंचा। राम-

दुलारी देवी ने जब बेटे को गीले कपड़ों में देखा तो चौंक कर पूछा—तेरे कपड़े कैसे भीग गए रे, नन्हे ?

लालबहादुर ने सारी बात बता कर कहा—सोचो भला मां, मल्लाह भी तो आखिर गरीब ही आदमी है न ! मेहनत-मजदूरी करके किसी तरह अपना और घर वालों का पेट पालता है। उसकी नाव पर मुफ्त सफर करना तो बुरा काम है न मां ! रही बात उधारी की, सो वह भी गन्दी आदत है। फिर जरा-सी बात के लिए किसी का एहसान लेने की जरूरत ही क्या है। आखिर मैंने खुद ही तैर कर नदी पार कर ली कि नहीं ?

रामदुलारी देवी ने खुश हो कर लालबहादुर को छाती से लगा लिया। उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—जो अच्छी बातें सोचता है, वही तरक्की करता है। तू जरूर एक दिन बड़ा आदमी बनेगा, बेटा !

और जानते हो ? वही छोटा-सा लड़का आगे चल कर सचमुच बड़ा आदमी बना—बहुत ही बड़ा आदमी—भारत के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री।

# आजादी की लड़ाई

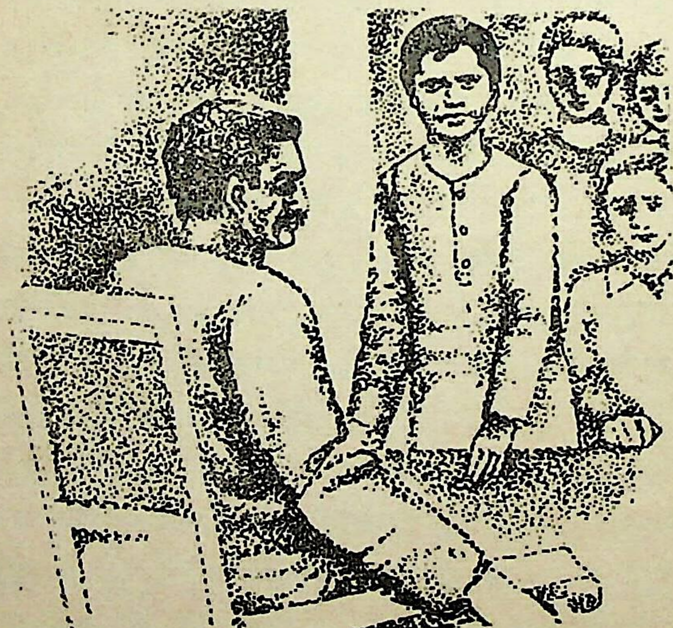


जिन दिनों लालबहादुर हरिश्चन्द्र हाई स्कूल में पढ़ रहे थे, उन्हीं दिनों एक रोज वाराणसी में महामना मदनमोहन मालवीय ने भाषण दिया। भाषण में उन्होंने जलियांवाला बाग में हुए घृणित काण्ड की भी चर्चा की। तुम वह घटना जानते हो कि नहीं? अच्छा तो थोड़ा-सा उसके बारे में भी जान लो।

जलियांवाला बाग नामक जगह पंजाब के अमृतसर शहर में है। उस समय हमारे देश में अंग्रेजों का राज्य था। उनकी गुलामी से भारत को आजाद कराने के लिए सारे देश में आजादी की लड़ाई छिड़ी हुई थी। जगह-जगह सभाएं हो रही थीं और अंग्रेज सरकार से भारत को आजाद करने की मांग की जा रही थी। ऐसी ही एक सभा 13 अप्रैल, 1920 को जलियांवाला बाग में भी हो रही थी कि एकाएक अंग्रेज पुलिस ने निरपराध लोगों पर हमला कर दिया। बिना किसी प्रकार की चेतावनी दिए भीड़ पर घोड़े

दौड़ाए गए और भागते हुए निहत्थे लोगों पर गोलियां चलाई गईं। इस तरह अत्याचारी अंग्रेजों की पुलिस ने देखते ही देखते न जाने कितनों को मार डाला।

यह सारा काण्ड सुन कर लालबहादुर का मन छटपटा उठा। उन्होंने उसी समय तय कर लिया कि मैं भी आजादी की लड़ाई में शामिल हूंगा और देश को आजाद कराने के लिए जरूरत पड़ी तो अपनी



जान भी दे दूंगा।

इसके बाद वह तुरन्त ही अपने अध्यापक निष्का-

मेश्वर मिश्र के पास गए और सारी बातें बता कर बोले—मैं देश की सेवा करना चाहता हूं, इसलिए अब स्कूल से मेरा नाम काट दीजिए।

निष्कामेश्वर मिश्र टालते हुए बोले—अभी तुम बच्चे हो, बेटा ! इस उम्र में तुम्हें पढ़ाई करनी चाहिए।

—लेकिन देश की सेवा मेरी पढ़ाई से ज्यादा जरूरी है।—लालबहादुर ने विनम्रता से कहा—अगर मैं अपने देश की और गरीब-दुखी भारत की जनता को कुछ भी सेवा कर सका तो समझूंगा कि मेरा जीवन धन्य हो गया।

निष्कामेश्वर मिश्र तरह-तरह से उन्हें समझाते रहे, लेकिन लालबहादुर किसी तरह भी नहीं माने। आखिर उन्होंने लालबहादुर की पीठ ठोंक कर कहा—तुम्हारे जैसे लोग ही देश की सच्ची सेवा कर सकते हैं। ऐसे लोग ही भविष्य में इस देश के सच्चे रत्न कहे जाएंगे। ठीक है, मैं तुम्हारा नाम काट दूंगा, लेकिन अभी नहीं। जल्दी ही नागपुर में कांग्रेस की वार्षिक सभा होने वाली है। उस समय देश के नेता मिल-जुल कर जो तय करेंगे, वैसा ही तुम भी करना। तब मैं तुम्हें नहीं रोकूंगा।

लालबहादुर मान तो गए पर उनका ध्यान देश

की ही ओर लगा रहा। आखिर सन् 1920 के दिसम्बर महीने में नागपुर में कांग्रेस की सभा हुई। उसमें गांधी जी ने साफ-साफ शब्दों में कहा कि अंग्रेज सरकार के साथ असहयोग किया जाए—यानी सरकार को किसी भी काम में मदद न दी जाए। सारे देश में जलूस निकाले जाएं, और आजादी की मांग की जाए।

बस, फिर क्या था ! देश भर में जलूस निकाले जाने लगे। ऐसा ही एक जलूस वाराणसी में हरिश्चन्द्र हाई स्कूल के सामने से भी गुजरा। उस समय लालबहादुर कक्षा में बैठे पढ़ रहे थे। जलूस देखते ही वह स्वयं पर काबू न पा सके और उठ कर खड़े हो गए। निष्कामेश्वर मिश्र तुरन्त लालबहादुर के मन की बात समझ गए। पास आकर उन्होंने लालबहादुर के सिर पर प्यार से हाथ फेरा। रुंधे गले से मानो आशीर्वाद देते हुए बोले—जब तुम्हारे जैसे बच्चों के मन में भी देश के लिए इतना प्यार है, तब हमारा भारत देश आजाद होकर ही रहेगा। अब मैं तुम्हें नहीं रोकूंगा। जाओ !

और लालबहादुर स्कूल से निकल कर आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। जानते हो उस समय उनकी उम्र क्या थी ? सिर्फ 16-17 साल। जलूस ज्यों-ज्यों

आगे बढ़ रहा था, त्यों-त्यों भीड़ भी बढ़ती जा रही थी। यह सब देख कर अंग्रेज सरकार गुस्से से आग-बबूला हो उठी। हुक्म होते ही पुलिस के सिपाही भीड़ पर टूट पड़े। जलूस निकालने वालों को पकड़-पकड़ कर जेलों में ठूंसा जाने लगा। लालबहादुर भी जेल में पहुंच गए। यह उनकी पहली जेल-यात्रा थी, उसके बाद तो मानो जेल ही उनका घर बन गया।

# वर्मा से शास्त्री



पहली बार लालबहादुर को छोटी-सी ही सजा मिली थो। कुछ दिनों बाद जब वह जेल से छूट कर बाहर आए तब मां रामदुलारी देवी ने समझाया—बेटा, देश की सेवा करना बहुत बड़ा काम है, लेकिन उससे भी बड़ा काम है स्वयं को उसके योग्य बनाना। मैं चाहती हूं कि अब तुम फिर से अपनी पढ़ाई शुरू कर दो। पढ़-लिख कर जितना ही योग्य बनोगे, उतनी ही अच्छी तरह देश की सेवा कर सकोगे।

लालबहादुर को माँ की बातें ठीक लगीं, लेकिन आजादी की लड़ाई लड़ने वाले को भला सरकारी स्कूल में कौन घुसने देता! ऐसे विद्यार्थियों के लिए गांधी जी ने 10 फरवरी, 1921 को वाराणसीमेंएक विद्यापीठ खोल दिया। लालबहादुर उसी विद्यापीठ में अपना नाम लिखा कर पुनः पढ़ने लगें। साथ-साथ आजादी की लड़ाई तो चल ही रही थी, सो जब-तब पकड़ कर उन्हें जेल में ठूँस दिया जाता। लेकिन इसका

असर उनकी पढ़ाई पर नहीं पड़ने पाया। आखिर वह देश-सेवा के लिए ही तो अपनी योग्यता बढ़ा रहे थे। सो हर बार वह बड़े उत्साह से जेल जाते और छूटने के बाद दुगुनी लगन के साथ अपनी पढ़ाई में जुट जाते। आखिर उन्होंने सन् 1925 में शास्त्री की परीक्षा 'प्रथम श्रेणी में' उत्तीर्ण कर ली।

हां, एक बात बताना तो मैं भूल ही गया। लालबहादुर के पिता 'वर्मा' थे न ! सो लालबहादुर भी शुरू-शुरू में अपने नाम के साथ 'वर्मा' लिखा करते थे। लेकिन हरिश्चन्द्र हाई स्कूल में पढ़ते समय उन्होंने अपने नाम के आगे से 'वर्मा' कटवा दिया था। निष्कामेश्वर मिश्र के टोंकने पर उन्होंने कहा था—हम पहले भारतीय हैं, तब हिन्दू-मुसलमान या सिख-ईसाई। नाम के साथ 'वर्मा' लिखने से जाति का पता चलता है। मैं जात-पांत के इस भेद-भाव को मिटाना चाहता हूं। इसलिए अब कभी भी अपने नाम के आगे 'वर्मा' नहीं लिखूंगा।

वाराणसी विद्यापीठ से प्रथम श्रेणी में शास्त्री की उपाधि मिल जाने पर अब वह अपने नाम के साथ 'शास्त्री' लिखने लगे थे—लालबहादुर शास्त्री।



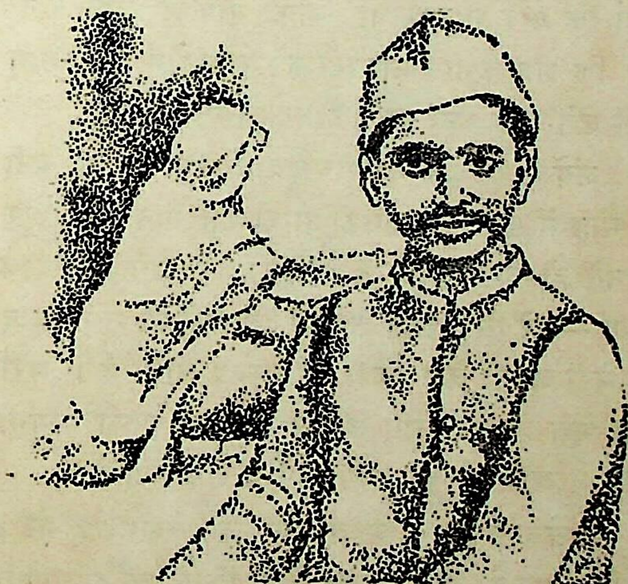
# आगे, और आगे

ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे थे, त्यों-त्यों शास्त्री जी देश-सेवा के काम में आगे ही आगे बढ़ते जा रहे थे। उन दिनों लाला लाजपत राय ने देशभक्तों की एक समिति बना रखी थी—लोक-सेवा-मण्डल। शास्त्री जी अपनी पढ़ाई पूरी करते ही 1926 में उस लोक-सेवा-मण्डल के आजीवन सदस्य बन गए। लाला लाजपत राय ने उनकी लगन और परिश्रम से प्रभावित होकर इलाहाबाद में लोक-सेवा-मण्डल का पूरा भार शास्त्री जी को ही सौंप दिया।

शास्त्री जी तुरन्त इलाहाबाद जाने के लिए तैयार हो गए, पर इसके लिए मां की आज्ञा लेनी जरूरी थी। रामदुलारी देवी ने खुशी-खुशी आज्ञा दे दी, लेकिन साथ में एक शर्त भी रख दी। उन्होंने कहा—तुम देश-सेवा के लिए जहां जाना चाहो, जाओ, जो करना चाहो, करो, मैं तुम्हें कभी नहीं रोकूंगी। हां,

मेरी भी एक बात मान लो। अब तुम विवाह कर लो!

शास्त्री जी चाहते तो नहीं थे, पर मां के हठ के आगे उन्हें झुकना पड़ा। बिना कोई धूम-धड़ाका किए बड़ी ही सादगी के साथ मिर्जापुर के एक कायस्थ घराने में शास्त्री जी का विवाह हो गया। शादी



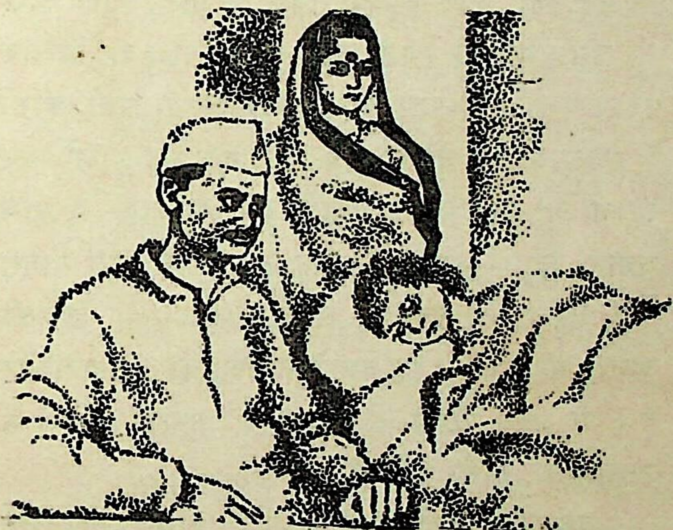
करके घर आते ही शास्त्री जी ने अपनी पत्नी श्रीमती ललिता देवी को बड़े साफ शब्दों में समझा दिया—मेरे लिए सबसे पहले देश और देशवासी हैं, तब और सब कुछ।

यह बात शास्त्री जी ने सिर्फ कही ही नहीं, करके भी दिखा दी ! कुछ ही सालों बाद की बात है। तब शास्त्री जी सातवीं बार जेल में बन्द थे। उसी समय घर से खबर आई कि उनकी बेटी पुष्पा बहुत बीमार है और मरने-मरने को हो रही है। अंग्रेज सरकार ने कहा कि यदि शास्त्री जी माफी मांग लें और वादा करें कि अब कभी आजादी की लड़ाई में वह भाग नहीं लेंगे, तब उन्हें छोड़ दिया जाएगा।

अंग्रेज सरकार ने सोचा था कि शास्त्री जी बेटी के मोह में पड़ कर उनकी सारी शर्तें मान लेंगे, पर जानते हो शास्त्री जी ने क्या कहा ? उन्होंने जवाब दिया—मेरे लिए पहले करोड़ों देशवासी हैं, उसके बाद ही मेरी अपनी बेटी पुष्पा का नम्बर आता है। मेरी बेटी भले ही मर जाए लेकिन मैं न तो माफी मांगूंगा और न आजादी की लड़ाई ही बन्द करूंगा।

अंग्रेज सरकार अपना-सा मुंह लेकर रह गई। आखिर मजबूर होकर उसने बिना किसी शर्त के शास्त्री जी को घर जाने की छुट्टी दे दी। शास्त्री जी घर पहुंचे, पर थोड़ी देर पहले ही उनकी बेटी पुष्पा मर चुकी थी। सब रो रहे थे। लेकिन शास्त्री जी ने भरे गले से कहा—जो होना था, हो गया। मैं पुष्पा को

देखने के लिए छुट्टी पर आया था, पर अब जब वह मर ही गई है तब बेकार यहां रुकने से क्या फायदा !



और वह तुरन्त ही जेल वापस चले गए ।

इसी के साल भर बाद को एक घटना और सुनो—उस समय भी शास्त्री जी जेल में थे, तभी पता चला कि बड़ा बेटा हरिप्रकाश बीमार है ! अंग्रेज सरकार ने एक हफ्ते की उन्हें छुट्टी दे दी। शास्त्री जी घर पहुंचे। हरिप्रकाश बुखार में बेहोश पड़ा था। जब-तब होश आता, वह पिता से लिपट कर पूछने लगता—बाबूजी, आप मुझे छोड़ कर चले तो नहीं

जाएंगे ?

लेकिन सात दिन की छुट्टी पूरी होते ही शास्त्री जी पुनः जेल जाने के लिए तैयार हो गए। हरिप्रकाश को उस समय भी 104 डिग्री बुखार था। वह बिस्तर पर पड़ा छटपटा रहा था। घर-बाहर के सभी लोगों ने समझाया कि बेटे के ठीक होने तक रुक जाओ, पर शास्त्री जी नहीं माने। उन्होंने बड़ी कठोरता के साथ जवाब दिया—अगर मैं ठीक समय पर जेल वापस नहीं पहुंचा तो बेईमान समझा जाऊंगा। देश की जनता भी सोचेगी कि हमारे नेताओं का मन कमजोर है। मैं अपने बेटे के लिए देश के करोड़ों लोगों के उत्साह पर पानी नहीं फेर सकता।

बुखार से तड़पता हुआ हरि 'बाबूजी, बाबूजी' पुकारता रहा और शास्त्री जी फिर जेल चले गए।

अब तो तुम समझ ही गए होगे कि शास्त्री जी के मन में देश और देशवासियों के लिए कितना लगाव था। उनके पास धन तो था नहीं, हां, वह तन-मन से जरूर देश-सेवा में पूरी तरह जुटे हुए थे। लोक-सेवा-मण्डल का काम तो वह कर ही रहे थे, साथ ही इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड और इलाहाबाद सुधार समिति के भी सदस्य बना दिए गए। इससे उनकी

जिम्मेदारियां और काम का बोझ कई गुना बढ़ गया, लेकिन शास्त्री जी भला परिश्रम से कब घबड़ाने वाले थे ! काम करने की गहरी लगन और मेहनत के बल पर वह बहुत जल्द कांग्रेसी नेताओं के प्रिय बन गए। इन्हीं गुणों के कारण आगे चल कर वह इलाहाबाद की जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधानमंत्री, फिर कुछ समय बाद अध्यक्ष भी चुन लिए गए।

तुमने एक कहावत तो सुनी ही होगी—आदमी नहीं, आदमी का काम प्यारा होता है ! यही बात शास्त्री जी के साथ भी लागू थी। किसी को उनके नाम से थोड़े ही प्यार था ! लेकिन शास्त्री जी देश के लिए जो त्याग कर रहे थे और जो काम कर रहे थे, उसके कारण जनता में उनका सम्मान दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था।

दूसरी ओर अंग्रेज सरकार भी भारतीयों के आजादी से सम्बन्धित लगातार आन्दोलनों के कारण थकती जा रही थी। आखिर उसने भारतीयों को आजादी देने से पहले कांग्रेसी नेताओं से अपनी काम चलाऊ सरकार बनाने के लिए कहा। उस समय जब देश में चुनाव हुए तो शास्त्री जी भी उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य चुने गए और मुख्यमंत्री गोविन्द

वल्लभ पन्त के संसदीय सचिव बना दिए गए।

फिर आया 15 अगस्त, 1947। शास्त्री जी ने रामदुलारी देवी के पैर छूते हुए खुशखबरी सुनाई—मां, हम लोगों की मेहनत सफल हो गई। आज हमारा देश भारत आजाद हो गया।

रामदुलारी देवी प्रसन्न हो गईं। उन्होंने प्यार से लालबहादुर का सिर सहलाते हुए कहा—लेकिन तुम्हारा काम अभी खत्म नहीं हुआ है नन्हे, बल्कि वह और बढ़ गया है। देश आजाद तो हो गया, पर अब इस आजादी की रखवाली भी तो करनी होगी।

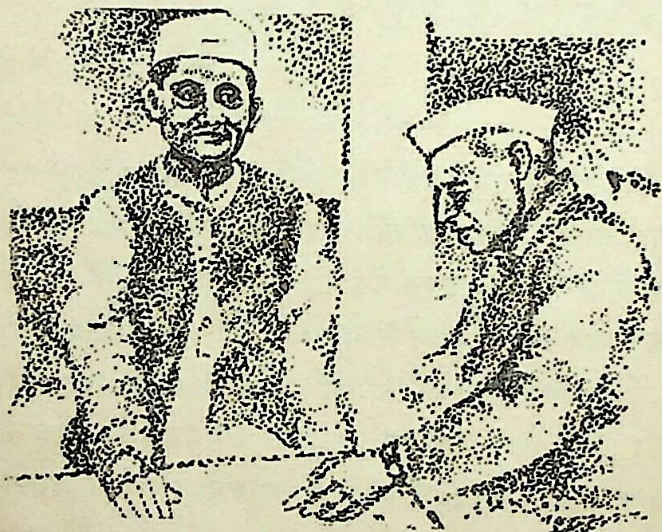
# आजादी के बाद



मां को कही हुई बात शास्त्री जी को जीवन-भर नहीं भूली। देश आजाद होने के बाद उनकी जिम्मेदारियां सचमुच बहुत बढ़ गईं। सन् 1947 से 1951 तक वह उत्तर प्रदेश में गृहमंत्री और यातायात मंत्री रहे। फिर शास्त्री जी की योग्यता और अन्य गुणों को देख कर प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें सन् 1952 में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में परिवहन तथा रेल मन्त्री बना दिया। संयोग की बात—सन् 1956 के नवम्बर महीने में एक रेल-दुर्घटना हो गई, जिसमें बहुत-से लोगों की जानें चली गईं। इससे शास्त्री जी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने तुरन्त मन्त्री पद से इस्तीफा दे दिया।

प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने बहुत समझाया, पर शास्त्री जी नहीं माने। उन्होंने कहा—मैं रेल मंत्री हूं, इसलिए रेल-दुर्घटना का कारण चाहे जो भी रहा हो, पर जिम्मेदार मैं ही हूं। अगर मैं इन

दुर्घटनाओं को रोकने का उपाय नहीं कर सकता तो मुझे भी मंत्री बने रहने का कोई अधिकार नहीं है।



और अपने हितैषियों की इच्छा की परवाह न करते हुए वह मंत्री का पद छोड़ कर अलग हट गए।

लेकिन देश की जनता जानती थी कि शास्त्री जी कितने अधिक देश-भक्त और योग्य व्यक्ति हैं। यही कारण है कि अगले ही साल वह फिर आम चुनाव में चुन लिए गए। इस बार नेहरू जी ने उन्हें व्यापार और उद्योग मंत्रालय सौंपा। फिर 4 अप्रैल, 1961 को उन पर गृह मंत्री का कार्यभार सौंप दिया गया। गृह मंत्री का पद अपने आप में कितना महत्त्वपूर्ण होता

है, इसका अनुमान तुम इसी से लगा सकते हो कि भारतीय संविधान के अनुसार देश के प्रधान मन्त्री के पद के बाद गृह मंत्री का ही नम्बर आता है।

शास्त्री जी ने हर पद पर बड़ी जिम्मेदारी और परिश्रम से काम किया। उनका सबसे बड़ा गुण था ईमानदारी। वह कभी कोई गलत काम नहीं करते थे, बल्कि हमेशा यही कोशिश करते रहते कि चाहे अपना कितना भी नुक्सान हो जाए, पर देश की भलाई करने में कहीं भो शिथिलता नहीं बरतो जानी चाहिए। इस बारे में भी उनके जीवन को एक घटना सुनाता हूं—

शास्त्री जी को बड़ी बेटी कुसुम जब विवाह के योग्य हुई तो उसके लिए एक लड़का देखा गया। नाम था कौशल कुमार। द्वितीय श्रेणो में पी० सी० एस० पास था। मतलब समझ गए न ? डिप्टी कलेक्टर बनने से पहले लोगों को यह परीक्षा पास करनी जरूरी होती है। घर वालों के साथ-साथ रिश्तेदारों को भी वह लड़का बहुत पसन्द आया। शादी तय हो गई।

उसी समय सरकार को कुछ नए डिप्टी कलेक्टर रखने की जरूरत पड़ गई। उनका चुनाव शास्त्री जी को स्वयं ही करना था। उन्होंने अपने सचिव को बुला कर पी० सी० एस० पास लोगों की सूची मांगी।

सचिव ने तुरन्त ही एक सूची ला कर उनके सामने रख दी। उसमें कौशल कुमार का भी नाम था।

शास्त्री जी ने सरसरी नजरों से सूची देखी—सूची काफी लम्बी थी, लेकिन नौकरी तो कुछ ही



लोगों को दी जानी थी। शास्त्री जी ने सूची में से चुनाव करना शुरू किया और जो बहुत ही योग्य लगे, उनके सामने निशान लगा दिया।

सूची फिर जब सचिव के पास पहुंची तो वह हैरान रह गया। उसे यह बात मालूम हो चुकी थी कि कौशल कुमार के साथ कुसुम की शादी होने वाली है। उसने सोचा था कि शास्त्री जी और किसी को नौकरी दें चाहे न दें, कौशल कुमार को तो वह अवश्य देंगे। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि कौशल कुमार के नाम के सामने शास्त्री जी ने निशान तक ही नहीं लगाया था।

सचिव सूची लिए-लिए शास्त्री जी के कमरे में दोबारा पहुंचा। बोला—श्रीमान जी, आप एक बार इस सूची को फिर से देख-परख लीजिए। मेरे खयाल से निशान लगाने में कहीं गलती रह गई है!

शास्त्री जी तुरन्त सचिव के मन की बात भांप गए। हंस कर बोले—सूची तो ठीक है, आपका खयाल ही गलत है।

बात फैलते-फैलते घरवालों तक पहुंची। रिश्तेदारों को भी पता चला। सबने शास्त्री जी को समझाना शुरू किया—यह क्या कर रहे हो···

शास्त्री जी ने कहा—जो किया है, सोच-समझ कर ही किया है। कौशल कुमार ने द्वितीय श्रेणी में परीक्षा पास की है। उससे पहले उन्हें नौकरी मिलेगी,

जो प्रथम श्रेणी में पास हुए हैं और निश्चित ही कौशल कुमार से ज्यादा योग्य हैं।

लोगों ने डरते-डरते कहा—लड़के वाले नाराज हो कर रिश्ता तोड़ देंगे !

—तोड़ दें !—शास्त्री जी ने दो टूक जवाब दिया —बेटी के ब्याह के लिए मैं बेईमानी नहीं करूंगा। मैं इस देश का एक जिम्मेदार मंत्री हूं, अपनी बेटी के फायदे के लिए मैं देशवासियों को धोखा नहीं दे सकता। अगर कुसुम का ब्याह कौशल कुमार के साथ नहीं होगा तो किसी और के साथ हो जाएगा !

लेकिन लड़के वालों ने इस बात का जरा भी बुरा नहीं माना बल्कि शास्त्री जी की उन्होंने प्रशंसा ही की। कुसुम की शादी कौशल कुमार के साथ ही हुई।

ऐसी ही एक घटना और सुनो ! एक बार शास्त्री जी की बहन सुन्दरी देवी उनके यहां आईं और कहने लगीं—मेरे लड़के ने आई० ए० एस० की परीक्षा पास कर ली है। अब उसे कहीं अच्छी-सी जगह रखवा दो।

शास्त्री जी ने टालते हुए कहा—अगर वह योग्य है तो खुद ही रख लिया जाएगा। मैं इस बारे में कुछ नहीं कर सकता।

सुन्दरी देवी ने नाराजगी से कहा—वाह, तुम

मन्त्री हो और मेरे बेटे के लिए इतना भी नहीं कर सकते ?

—नहीं ।—शास्त्री जी ने कड़ाई से कहा—मैं मंत्री हूं, इसीलिए चाहे तुम्हारा बेटा हो, चाहे मेरा या किसी और का, मेरे लिए सब बराबर हैं । मैं किसी की तरफदारी नहीं करूंगा ।

और सचमुच, शास्त्री जी ने कभी किसी की तरफदारी नहीं की । वह जब तक मंत्री बने रहे तब तक देश भर के लोगों को एक समान समझते रहे । यहां तक कि उन्होंने खुद अपने लिए भी कुछ नहीं किया । जो तनख्वाह उन्हें मिलती थी, उसी से किसी तरह घर का खर्च चलाते थे । मांस या शराब जैसी नशीली चीजें तो वह छूते भी नहीं थे । खद्दर का धोती-कुर्ता पहनते और बड़ी ही सादगी से रहा करते थे । उन्हें कभी भी यह घमण्ड नहीं हुआ कि मैं मंत्री या कोई बड़ा आदमी हूं । यह सब सोचने का उन्हें मौका ही कहां मिलता था ! उनके लिए तो बस देश था और देश का काम था ।

सन् 1963 में शास्त्री जी ने फिर इस्तीफा दे दिया । वह सोचते थे कि मंत्री की कुर्सी पर बैठने वाले तो बहुत-से लोग हैं, लेकिन देश की सच्ची सेवा

तो तब होगी जब बिना किसी लोभ के देशवासियों के हित के लिए कोई महत्त्वपूर्ण काम किया जाए। इसीलिए उन्होंने मंत्री पद छोड़ देना उचित समझा था। लेकिन देश के नेता शास्त्री जी की ईमानदारी और योग्यता जानते थे। दूसरी ओर प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू पर लगातार काम का बोझ बढ़ते रहने से उनका शरीर शिथिल पड़ता जा रहा था। उनके कार्य में हाथ बंटाने के लिए एक योग्य आदमी की उन्हें सख्त जरूरत थी। भला शास्त्री जी से ज्यादा ईमानदार और योग्य आदमी उन्हें कहां मिलता ! आखिर नेहरू जी ने कुछ ही दिनों बाद पुनः शास्त्री जी को मंत्री बना दिया। और वह पहले ही की तरह परिश्रम और लगन के साथ काम पर जुट गए।

27 मई, 1964 को प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू का जब स्वर्गवास हुआ तो लगा जैसे देश का एक महान नेता छिन जाने से देश अनाथ हो गया है। ऐसे विकट समय में लोगों को देश की पूरी जिम्मेदारियां संभालने के लिए एक ही आदमी योग्य दीखा—श्री लालबहादुर शास्त्री। 9 जून, 1964 के दिन शास्त्री जी को प्रधानमन्त्री चुन लिया गया और देश का सारा भार उनके कन्धों पर डाल दिया गया।

# छोटा-सा आदमी, बहुत बड़ा काम



श्री लालबहादुर शास्त्री को भारत का प्रधानमंत्री बनने पर संसार-भर के नेताओं ने बधाई-पत्र भेजे, लेकिन मन-ही-मन सब सोच रहे थे—इतना छोटा-सा आदमी इतने बड़े देश का कार्यभार क्या सम्हाल पाएगा ?

पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खां ने तो स्थिति का एकदम गलत अन्दाजा लगा लिया। उसने तुरन्त भारत पर हमला कर दिया और ललकारते हुए कहा —धोती-कुर्ता पहनने वाले हिन्दोस्तानी लोग कभी हमारा मुकाबला नहीं कर सकते !

लेकिन धोती-कुर्ता पहनने वाले और कद में छोटे शास्त्री जी मन से बड़े मजबूत निकले। उन्होंने पाकिस्तान को मुंहतोड़ जवाब दिया। शास्त्री जी का आदेश पाते ही हमारी सेना के वीर जवान पाकिस्तानी आक्रमणकारियों पर टूट पड़े और उन्हें कुचलते रौंदते हुए आगे बढ़ने लगे। पाकिस्तानी सेना के पास

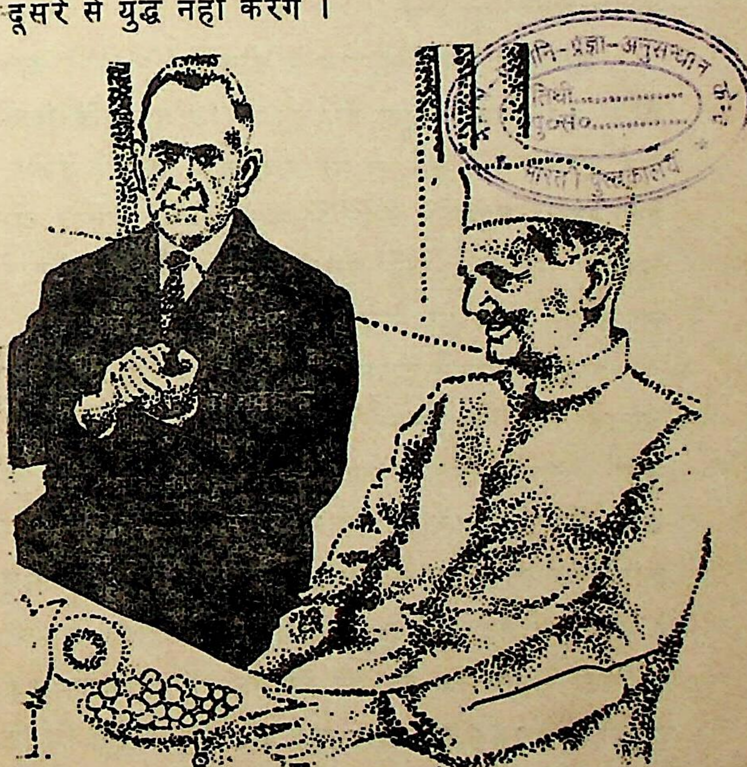
अमरीका में बने हुए मजबूत पैटन टैंक और भयानक लड़ाकू हवाई जहाज संबर जेट थे। लेकिन शास्त्री जी की ललकार पर हमारे वीर जवानों ने पैटन टैंकों को मिट्टी के खिलौनों की तरह तोड़ डाला। हमारे देश में ही बने छोटे-छोटे नेट विमानों ने सैबर जेटों की धज्जियां उड़ा दीं। पाकिस्तानी सेना जब हारने लगी, तब अयूब खां साहब के होश ठिकाने आए ! उसकी सारी अकड़ गायब हो गई। आखिर दुनिया भर के देशों ने कह-सुन कर लड़ाई रुकवा दी।

रूस के प्रधानमंत्री श्री कोसिजिन दोनों देशों में समझौता कराने को कोशिश करने लगे। उन्होंने सुझाव दिया कि दोनों देशों के नेता रूस आएं और वहां उनके सामने एक साथ बैठ कर शान्ति बनाए रखने के लिए बातें करें।

शास्त्री जी तैयार हो गए। उन्होंने कहा—मैं और मेरा देश शान्ति के ही पुजारी हैं। हम बेगुनाह लोगों की हत्या नहीं करना चाहते। लेकिन अगर कोई भारत की ओर अंगुली भी उठाएगा तो हम उसका हाथ तोड़ देंगे।

3 जून, 1966 को शास्त्री जी शान्ति की बातें करने के लिए रूस रवाना हो गए। पाकिस्तान के

राष्ट्रपति अयूब खां भी वहां जा पहुंचे। ताशकन्द नामक स्थान पर दोनों नेताओं की बात-चीत होने लगी और 10 जनवरी, 1966 को शास्त्री जी और अयूब खां ने एक समझौते पर दस्तखत कर दिए कि हम अब एक दूसरे से युद्ध नहीं करेंगे।



इस समझौते की खुशी में श्री कोसिजिन ने उस रोज दोनों नेताओं को शानदार दावत की। शास्त्री

उस समय बहुत खुश थे। उन्होंने अयूब खां से भी बड़े प्रेम से बातें कीं। दावत के बाद जब सोने के लिए अपने कमरे में जाने लगे तब भी वह खुश थे। लेकिन उन्हें क्या मालूम था कि यह खुशी उनकी जिन्दगी की आखिरी खुशी थी।

आधी रात तो आराम से बीत गई। उसके बाद यानी 11 जनवरी शुरू होते ही करीब एक बजे एका-एक शास्त्री जी को खांसी आई और छाती में तेज दर्द उठा। बगल के कमरे में उनके निजी डाक्टर श्री चुग सो रहे थे। उन्हें बुलाते हुए दरवाजे की ओर लपके पर बीच ही में बेहोश हो कर गिर पड़े।

पलक झपकते हड़कम्प मच गया। डा० चुग के अलावा और भी कितने ही डाक्टरों की भीड़ वहां आ जुटी। जल्दी-जल्दी इंजेक्शन लगाया गया, पर उसका असर होने के पहले ही शास्त्री जी ने हमेशा के लिए आंखें मूंद लीं। सोलह-सत्रह साल की किशोर आयु से ही देश सेवा में जूझने वाले लालबहादुर शास्त्री आखिरी समय तक देश की ही सेवा करते-करते 11 जनवरी, 1966 को प्रातः एक बज कर बत्तीस मिनट पर स्वर्गवासी हो गए।

शास्त्री जी का शव हवाई जहाज से भारत लाया

गया। जिस दिन वह शान्ति के लिए समझौता करने जा रहे थे, उस दिन हंसते-हंसते उनके देशवासियों ने उन्हें विदाई दी थी; लेकिन जब वह लौटे, तब सारा देश रो रहा था। उनकी देश-सेवा, ईमानदारी, परिश्रम और त्याग को भला कौन भूल सकता है! तत्कालीन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन ने शास्त्री जी के इन्हीं गुणों के कारण बाद में उन्हें 'भारतरत्न' की उपाधि से सम्मानित किया।





उमेश प्रकाशन

5, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-6